2. प्रगीत काव्य

प्रगीत काव्य में कवि प्रबन्ध के अनेक वर्णनात्मक, चित्रात्मक व्यवधानों को न्यूनतम करके अनुभूति के स्पर्श से रसाभिव्यक्ति की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार प्रगीत काव्य आत्मप्रधान रचना है, जिसमें कवि की मनोभावना ही अभिव्यंजित होती है। तात्पर्य यह है कि प्रगीत पद्धति में स्वानुभूति की विवृत्ति ही प्रमुख होती है।

जिस काव्य में वस्तु चरित्र और वातावरण के माध्यम से रस की प्रतीति कराई जाती है। उसके लिए 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग होता है। 'प्रबन्ध' में पात्रों और घटनाओं के वर्णन तथा रूप विधान आवश्यक है। काव्य का दूसरा रूप निर्बन्ध है, अर्थात् स्वतन्त्र। जब कवि स्वानुभूति को सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति देता है तब एक ऐसी रचना होती है जिसमें रस की अभिव्यक्ति प्रबन्ध की रसाभिव्यक्ति से कुछ भिन्न होती है। ऐसी रचना के लिए गीतिकाव्य, प्रगीत काव्य आदि परिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है।

हिन्दी में साधारणत: गीत, प्रगति तथा गीतिकाव्य ये तीन शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से वस्तुत: गीतिकाव्य का प्रयोग 'लिरिक' के लिए तथा गीत और प्रगति का प्रयोग 'सॉंग' के लिए किया जाता है। आधुनिक काव्यों में लिखे गए वे गीत जो काव्य होने के साथ ही अत्यधिक गेय होते हैं।

अपनी वैयक्तिकता और आत्मपरकता के कारण 'लिरिक' अथवा 'प्रगीत' काव्य की कोटि में आती है। प्रगीतधर्मी कविताएँ न तो सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त समझी जाती हैं, न उनसे इसकी अपेक्षा की जाती है। आधुनिक हिन्दी कविता में गीति और मुक्तक के मिश्रण से नूतन भाव भूमि पर जो गीत लिखे जाते हैं, उन्हें 'प्रगति' की संज्ञा दी जाती है। सामान्य समझ के अनुसार प्रगीतधर्मी कविताएँ नितान्त वैयक्तिक और आत्मपरक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र हैं।

हिन्दी कविता में प्रगीतों का स्थान—प्रगीत वे कविताएँ हैं जिन्हें अक्सर माना जाता है कि ये कविताएँ सीधे-सीधे सामाजिक न होकर अपनी वैयक्तिकता और आत्मपरकता के कारण 'लिरिक' अथवा प्रगीत काव्य की कोटि में आती हैं। गीतिकाव्य गीतशैली का नव्यतम विकास है। प्रगीतधर्मी कविताएँ न तो सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त समझी जाती है, न उनसे इतनी उपेक्षा की जाती है, क्योंकि सामान्यतया वे नितान्त वैयक्तिक और आत्मपरक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र हैं।

परन्तु छायावादीकाल में प्रसाद की शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण, पेथोला की प्रतिध्वनि 'प्रलय की छाया' तथा 'कामायनी' और निराला की 'राम की शक्तिपूजा' तुलसीदास जैसे आख्यानक काव्य इस मिथक को तोड़ते हुए प्रगीतों की अलग कोटि विकसित करते हैं। आगे मुक्तिबोध, नागार्जुन, शमशेर, बहादुरसिंह के प्रगीत महत्वपूर्ण स्थान खाते हैं। मुक्तिबोध के यहाँ प्रगीत वस्तुपरक नाट्यधर्मी कविताओं के रूप में हैं, जो आत्मपरक हैं। आत्मसंघर्ष से उपजी हैं जिनमें सामाजिक भी निहित है।

ये नई कविता के अन्दर आत्मपरक कविताओं की ऐसी प्रबल प्रवृत्ति थी, जो या तो समाज निरपेक्ष थी या फिर जिसकी सामाजिक अर्थवत्ता सीमित थी, परन्तु इनमें जीवन यथार्थ भाव बनकर प्रस्तुत होता है। त्रिलोचन ने वर्णनात्मक कविताओं के बावजूद ज्यादातर सॉनेट और गीत ही लिखे हैं। कहने को तो ये प्रगीत हैं, लेकिन जीव जगत और प्रकृति के जितने रंग-बिरंगे चित्र त्रिलोचन के काव्यसंसार में मिलते हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। प्रगीतों में मितकथन में अतिकथन से अधिक शक्ति होती है। अत: प्रगीत का इतिहास समकालीन कवियों का इतिहास कह सकते हैं।

आलोचकों की दृष्टि से प्रगीत वैसा काव्य है जिसमें व्यक्ति का एकाकीपन झलके अथवा समाज के विरुद्ध व्यक्ति या समाज से कटा हुआ हो। प्रगीतात्मकता का अर्थ है एकान्त संगीत अथवा अकेले कंठ की पुकार। प्रगीत की यह धारणा इतनी बद्धमूल हो गयी है कि आज भी प्रगीत के रूप में प्राय: उसी कविता को स्वीकार किया जाता है, जो नितान्त वैयक्तिक और आत्मपरक है।

Scanned with CamScanner

परन्तु थियोडोर एडोनो ने कहा है कि व्यक्ति अकेला है, यह ठीक है, परन्तु उसका आत्मसंघर्ष अकेला नहीं है। उसका आत्मसंघर्ष समाज में प्रतिफलित होता है। यही कारण है कि बच्चन जैसे कवि सरल सपाट निराशा से अलग करते हुए एक गहरी सामाजिक सच्चाई को जग संघर्ष के कारण इनमें सच्चे 'निराला आदि को व्यक्त करता है। नई प्रक्रिया द्वारा उसका निर्माण करना चाहता है। यहाँ व्यक्ति बनाम समाज जैसे सरल द्वन्द्व का स्थान समाज के अपने अन्तर्विरोधों ने ले लिया है।'

व्यक्तिवाद उतना आश्वस्त नहीं रहा बल्कि स्वयं व्यक्ति के अन्दर भी अत: संघर्ष पैदा हुआ। विद्रोह का स्थान आत्मविडम्बना ने ले लिया। यहाँ समाज के उस दबाव को महसूस किया जा सकता है जिसमें अकेले होने की विडम्बना के साथ उसका अन्तर्द्वन्द्व उसे सामाजिकता की प्रेरणा देता है और कवि प्रगीतवादी हो जाता है।

त्रिलोचन की कविताएँ कहने के लिए प्रगीत हैं लेकिन जीव-जगत और प्रकृति के जितने रंग-बिरंगे चित्र त्रिलोचन के काव्य संसार में मिलते हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। किन्तु इन चित्रों को अन्तत: जीवन्त बनाने वाले प्रगीत नामक का एक अनूठा व्यक्तित्व है। जिसका स्पष्ट चित्र 'उस जनपद का कवि हूँ। संग्रह के उन आत्मपरक सॉनेटो में मिलता है। इनमें आत्मचित्र वस्तुत: एक प्रगीत नामक की निवैयक्तिक कल्पसृष्टि है जिनसे नितान्त वैयक्तिकता के बीच भी एक प्रतिनिधि चरित्र से परिचय की अनुभूति होती है।'

वहीं नागार्जुन की बहिर्मुखी आक्रामक काव्य प्रतिभा के बीच आत्मपरक प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति के क्षण भी आते हैं तो उनकी विकट तीव्रता प्रगीतों के परिचित संसार का एक झटके से छिन्न-भिन्न कर देती हैं, फिर चाहे 'वह तन गई रीढ़' जैसे प्रेम और ममता की नितान्त निजी अनुभूति हो, चाहे जेल के सीखचों से सिर टिकाये चलने वाला अनुचिन्तन और अनुताप नागार्जुन के काव्य संसार के प्रगीत नामक का निष्कवच फक्कड़ व्यक्तित्व उनके प्रगीतों को विशिष्ट रंग तो देता ही है, सामाजिक अर्थ भी ध्वनित करता है।

कवि त्रिलोचन 'वही चित्रोचन है' वह और नागार्जुन की 'तन गई रीढ़' कविता में अपनी वैयक्तिकता में विशिष्ट और सामाजिकता में सामान्य है। यहाँ कवि व्यक्तिवादी न होते हुए भी व्यक्ति विशिष्ट के प्रति झुका हुआ है। अपने समाज से लड़ते हुए सामाजिक है। दुनियादारी न होते हुए भी इसी दुनिया का है। यह नया प्रगति उनके नये व्यक्तित्व से ही सम्भव हो सका है। उनके व्यक्तित्व के साथ निश्चित सामाजिक अर्थ भी ध्वनित करता है। इन कविताओं में कवि समाज के बहिष्कार के द्वारा ही व्यक्ति अपनी सामाजिकता प्रमाणित करता है और व्यक्तिवाद को जन्म देने वाली औद्योगिक पूँजीवादी समाजव्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हैं। कवि की मानसिक स्थिति बदल जाती है। व्यक्ति बनाम समाज जैसे सरल द्वन्द्व का स्थान समाज के अपने अन्तर्विरोधों ने ले लिया है। स्वयं व्यक्ति के अन्दर के अन्तर्संघर्ष को दिखलाते हैं।

प्रगीत के तत्व—काव्य की अन्य विधाओं की भाँति प्रगीत के भी कुछ निश्चित तत्व हैं जिनके आधार पर ही शुद्ध प्रगीत का निर्णय किया जा सकता है। प्रगीत के तत्वों का सम्यक निर्वाह महान प्रगीतकार की कसौटी है। यदि ऐसा नहीं है तो कलाकार प्रगीत की दृष्टि से सफल नहीं माना जा सकता।

काव्य की विधा के रूप में प्रगीत काव्य का शास्त्रीय प्रतिपादन प्राचीन साहित्य में नहीं किया गया है। उसकी तात्विक विवेचना अर्वाचीन युग में हुई है। आलोचना शास्त्रियों ने प्रगीत के छ: मुख्य तत्व निर्धारित किये हैं—

1. संगीतात्मकता
2. आत्मभिव्यक्ति
3. रागात्मक अनुभूति का समत्व
4. जीवन के एक अंश का चित्रण
5. भावाभिव्यंजना
6. संक्षिप्तता।

सामान्यत: लोग गेय मुक्तक को प्रगीत कह देते हैं, किन्तु यह धारणा उचित नहीं है। गेयता प्रगीत काव्य की एकमात्र विशेषता नहीं है। मुक्तक छन्द बद्ध होने के कारण गेय भी होता है। प्राय: मुक्तकों को भी गाते हुए सुना गया है। 'रामचरितमानस' प्रबन्ध काव्य होते हुए भी गाया जाता है। अत: गेयता प्रबन्ध मुक्तक और प्रगीत का विभाजक तत्व नहीं है। मुक्तक और प्रगीत में भेद यह है कि मुक्तक छन्द की इकाई उपस्थित करता है और प्रगीत भावों की अन्विति। मुक्तक में विषय को प्रधानता रहती है, प्रगीत में विषयों की मुक्तक की रचना शान्त एवं स्थिर चित्त के द्वारा होती है, किन्तु प्रगीत आवेग का उच्छलन है। एक में भाव स्पर्श मात्र है, दूसरे में भाव की प्रधानता। तात्पर्य यह है कि मुक्तक छन्द-बन्धन से युक्त है, किन्तु प्रगीत की रचना प्रक्रिया पूर्णत: आन्तरिक है।

Scanned with CamScanner